दैनिक भास्कर

Date: 04-03-25

अभिव्यक्ति स्वतंत्र तो हो, पर वह जिम्मेदार भी हो

संपादकीय

समाज बना तो कुछ अनिवार्य शर्तें भी बनीं। उनमें सबसे पहली थी, नैसर्गिक व्यक्तिगत मूल्यों को अक्षुण्ण रखते हुए सबका कल्याण सर्वोपरि रखना। कालांतर में बेन्थम ने इसे 'सबके लिए सबसे बड़ा 'सुख' (ग्रेटेस्ट हैप्पीनेस फॉर द ग्रेटेस्ट नंबर) कहकर दुनिया के कानून का मूल मंत्र बना दिया। लेकिन इसकी भी सीमा थी। भारत में संविधान- निर्माताओं ने अनुच्छेद 19(1) के तहत अभिव्यक्ति की आजादी को मौलिक अधिकार तो माना लेकिन साथ ही अनुच्छेद 19 (2) के तहत उसमें प्रतिबंध भी लगाए। उनमें से एक था 'शिष्टाचार और सदाचार के हित में'। कालांतर में डॉक्ट्रिन ऑफ कंटेम्पररी कम्युनिटी स्टैंडर्ड्स (समसामयिक सामाजिक मानदंडों का सिद्धांत) आया। लेकिन सदाचार के मौलिक प्रतिबंधों पर दुनिया के किसी कोर्ट ने ढिलाई नहीं दी। वैयक्तिक आजादी के नाम पर समाज की चेतना को कुंठित करने वाली कोई भी अभिव्यक्ति मान्य नहीं । पत्रकारों और सामान्य नागरिकों को अभिव्यक्ति की आजादी विचारों के आदान-प्रदान से जनमत को बेहतर करने के उद्देश्य से मिली, लेकिन राज्य को अधिकार है कि वह जनहित तय करे। सहज, सस्ती और सर्वसुलभ तकनीकी के जरिए अभिव्यक्ति के नाम पर फूहड़ कंटेंट समाज के लिए खतरा बन गया है। यह तर्क कि लोग यही सब देखते-सुनते हैं, कानून, न्याय और नैतिकता कम समझ दिखाता है। यूट्यूबर्स अपनी जिम्मेदारी समझें ।

दैनिक जागरण

Date: 04-03-25

अमेरिका के आगे असहाय यूक्रेन

हर्षवी. पंत, (लेखक आब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन में उपाध्यक्ष हैं)

अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप और यूक्रेन के राष्ट्रपति बोलोदिमीर जैलेंस्की के बीच बीते दिनों हुई मुलाकात हाल के दौर की सबसे चर्चित मुलाकातों में से एक रही। टीवी कैमरों के सामने राष्ट्राध्यक्षों के बीच इस तल्ख बहस को पूरी दुनिया ने देखा । इसके अलग-अलग पहलुओं पर चर्चा एवं विश्लेषण जारी है। लोग कूटनीति से लेकर आतिथ्य और मेजबानी एवं सामान्य शिष्टाचार से लेकर नाना प्रकार की कसौटियों पर इस मुलाकात को कस रहे हैं। इसने भू-राजनीति और वैश्विक समीकरणों को भी एकाएक बदलने का काम किया। अमेरिका के साथ खनन समझौते पर हस्ताक्षर और बदले में निरंतर मदद के आश्वासन से वाशिंगटन आए जेलेंस्की जहां अपमानित होकर खाली हाथ लौटे, वहीं यूरोपीय देशों को आनन-

फानन अपनी बैठक बुलाकर यूक्रेन के समर्थन में आगे आना पड़ा। ट्रंप और जेलेंस्की की मुलाकात ने यूक्रेन युद्ध को लेकर अनिश्चितताएं बढ़ाने के साथ ही दुनिया में खेमेबाजी के आसार बढ़ा दिए हैं।

यह स्पष्ट है कि ओवल आफिस में ट्रंप-वेंस और जेलेंस्की के बीच जो कुछ हुआ, उसे कूटनीतिक कसौटियों पर शिष्टता नहीं कहा जा सकता। यह सही है कि सभी देश अपने-अपने हितों की पैरवी करते हैं, लेकिन उसकी एक मर्यादा होती है। भारतीय परंपरा में आतिथ्य के दृष्टिकोण से भी इसे उचित नहीं ठहराया जा सकता। जेलेंस्की का रुख ट्रंप-वेंस को भले ही कुछ अड़ियल लगा हो, लेकिन वह अपनी प्रतिक्रिया में और संयमित हो सकते थे। अगर ऐसी तनातनी की स्थिति निर्मित हुई तो उसके पीछे अविश्वास की भावना हो सकती हैं। यह किसी से छिपा नहीं कि ट्रंप जबसे राष्ट्रपति बने हैं, तबसे रूस को लेकर उनका रवैया बहुत नरम रहा है। बीते दिनों सऊदी अरब में रूसी अधिकारियों के साथ अमेरिकी प्रतिनिधियों की बैठक भी बहुत सौम्य परिवेश में संपन्न हुई, जिसमें दोनों पक्षों ने एक-दूसरे के प्रति परस्पर सम्मान का परिचय दिया। इतना ही नहीं, बीते दिनों संयुक्त राष्ट्र में अमेरिका ने रूस के समर्थन में मतदान तक किया जबकि उस मामले में भारत और चीन जैसे रूस के सहयोगी माने जाने वाले देशों ने अनुपस्थित रहना उचित समझा। ट्रंप ने अपने चुनाव अभियान में भी यूक्रेन युद्ध को जल्द समाप्त करने को एक प्रमुख मुद्दा बनाया था और सत्ता संभालने के बाद से ही वह ऐसे प्रयासों में जुटे हुए हैं। स्वाभाविक है कि जेलेंस्की उनकी इस अधीरता को समझते हुए दबाव महसूस कर रहे हों और दोनों पक्षों के बीच बात बनने के बजाय बिगड़ गई तो यह हाल के दौर में उपजे अविश्वास का ही परिणाम रहा। इस घटनाक्रम से यह भी संकेत मिलता है कि ट्रंप यूक्रेन के साथ बहुत करीबी एवं आत्मीय रिश्ते नहीं रखना चाहते। उनकी यह मंशा भी दिखाई पड़ती हैं कि वह मदद के बदले यूक्रेन को दबाव में लेकर उस पर अपने फैसले थोपना चाहते हैं।

चूंकि अमेरिकी मदद के बिना यूक्रेन के लिए रूस का प्रतिरोध करना मुश्किल है, इसीलिए ट्रंप को यही उम्मीद होगी कि देर-सबेर जेलेंस्की उनके दबाव के आगे टूट जाएंगे। ट्रंप के रवैये ने जेलेंस्की और यूरोप पर दबाव बढ़ा दिया है। यही कारण है कि यूरोपीय देशों के दिग्गजों को आनन-फानन लंदन में एक बैठक बुलाकर यूक्रेन के प्रति एकजुटता दिखानी पड़ी। इस बैठक में बड़े-बड़े वादे और दावे किए गए कि यूरोपीय देश यूक्रेन की सुरक्षा को लेकर प्रतिबद्ध हैं, लेकिन यह भी सच है कि कीव को सहारा देने के मामले में यूरोपीय देशों के पास न तो पर्याप्त क्षमताएं हैं और न ही संसाधन ऐसे में अमेरिकी सहायता अपरिहार्य होगी। यह बात यूरोपीय नेता भी भलीभांति समझते हैं। जेलेंस्की के वाशिंगटन दौरे से पहले ब्रिटेन के प्रधानमंत्री और फ्रांस के राष्ट्रपति अमेरिका गए थे। इसके प्रबल आसार हैं कि उस दौरान दोनों नेताओं ने ट्रंप को यूक्रेन के मुद्दे पर समर्थन के लिए मनाने के भी पूरे प्रयास किए होंगे। यहां तक कि यूक्रेन को लेकर ट्रंप की एक टिप्पणी को बीच में ही काटते हुए फ्रांसीसी राष्ट्रपति मैक्रों ने उस मामले से संबंधित तथ्य सामने रखने का प्रयास भी किया था। अमेरिकी मदद की महत्ता को इसी से समझा जा सकता है कि नाटो महासचिव ने भी जेलेंस्की को यही सुझाव दिया कि वह अमेरिका को कुपित न करें और सहयोग के लिए प्रयास करें।

ट्रंप जल्द से जल्द यूक्रेन युद्ध समाप्त कराना चाहते हैं और उनकी अधीरता इसी से समझी जा सकती है कि वह बैठक के दौरान जेलेंस्की की आपत्तियों के प्रति बहुत गंभीर नहीं थे। जब बात बिगड़ी तो उन्होंने एकतरफा एलान कर दिया कि 'वह (जेलेंस्की) अभी शांति के मूड में नहीं और जब वह शांति की बात करना चाहें तो हमारे दरवाजे उनके लिए खुले हुए हैं।' अभी तो यही आसार दिख रहे हैं कि ट्रंप यूक्रेन को उसके हाल पर छोड़ने से गुरेज नहीं करेंगे। इससे यूरोप के समक्ष ऊहापोह की स्थिति बढ़ेगी। इसकी तपिश भी महसूस होने लगी है। यूरोपीय आयोग की प्रमुख उर्सुला वान डेर लेयेन ने दोहराया कि यूक्रेन की मदद के लिए सभी उपाय किए जाएंगे और यूरोप इसे लेकर ज्यादा जिम्मेदारी उठाने को तैयार है।

ब्रिटेन ने भी 2.6 अरब पाउंड की सहायता का एलान किया है। हालांकि ऐसी सहायता को जमीन पर उतरने में समय लगेगा। इससे यूक्रेन को तात्कालिक मदद नहीं मिल पाएगी, जिसकी उसे अभी बहुत जरूरत है, क्योंकि रूस अपना शिकंजा लगातार कसता जा रहा है। ट्रंप के रुख-रवैये से उसे और ताकत मिली है। यूरोप और अमेरिका के बीच बढ़ रहे मतभेद भी पुतिन का हौसला बढ़ाएंगे। जहां यूरोपीय नेताओं को पुतिन पर भरोसा नहीं, वहीं ट्रंप न केवल पुतिन के प्रति रवैया बदल रहे हैं, बल्कि रूस को लेकर अपनी नीति नए सिरे से गढ़ने में लगे हैं। रूस भी अमेरिकी विदेश नीति को व्यावहारिक बताते हुए उसे अपने हितों के अनुरूप बता रहा है। स्वाभाविक है कि इससे यूरोप की चिंता बढ़ेंगी। यह बदलता परिदृश्य यूक्रेन युद्ध पर विराम को लेकर अनिश्चितताएं बढ़ाने का ही काम करेगा।

Date: 04-03-25

बढ़ रहा भारत का अंतरराष्ट्रीय कद

विवेक ठाकुर, (लेखक लोकसभा के सदस्य हैं)

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के सशक्त नेतृत्व में भारत न केवल विकास की नई परिभाषाएं गढ़ रहा है, बल्कि वैश्विक मंच पर भी एक शक्ति के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है। मोदी सरकार की निर्णायक नीतियां, प्रगतिशील दृष्टिकोण और राष्ट्रहित को सर्वोपरि रखने वाली कार्यशैली ने भारत को उन्नति की ओर अग्रसर कर दिया है, जो विकसित भारत के लक्ष्य को हासिल करने से पहले रुकने वाला नहीं है। हाल में संपन्न दिल्ली विधानसभा चुनाव में भाजपा की ऐतिहासिक जीत जनकल्याणकारी केंद्रीय बजट, मध्यवर्ग के लिए कर राहत, फ्रांस में आयोजित एआइ सम्मेलन में भारत की प्रभावशाली भागीदारी, मोदी का अमेरिका दौरा और यूरोपीय संघ (ईयू) के दृष्टिकोण में भारत का बढ़ता महत्व देश के प्रभुत्व में हुई वृद्धि को प्रमाणित करता है। आज दुनिया के कई हिस्सों में फैली अशांति और युद्ध की स्थिति में भारत हमेशा से शांति के पक्ष में दिखाई दिया है। प्रधानमंत्री मोदी का दृष्टिकोण है कि दुनिया का भविष्य शांति और सहिष्णुता के सिद्धांतों पर आधारित होगा, तभी सभी देश मिलकर लोगों के कल्याण, सुरक्षा और समृद्धि के लिए कार्य कर सकेंगे। यही कारण है कि कई देशों के राष्ट्र प्रमुख भारत की और उम्मीद से देख रहे हैं।

मोदी सरकार ने केंद्र और राजग शासित राज्यों में एक नई राजनीतिक संस्कृति को जन्म दिया है, जिसका मूलमंत्र सुशासन, पारदर्शिता, जवाबदेही और गरीब कल्याण है। उसने विकसित भारत डिजिटल इंडिया और आत्मनिर्भर भारत जैसे अभियानों के जरिये जनभागीदारी को प्राथमिकता दी है। दिल्ली चुनाव में भाजपा की सफलता इसका प्रमाण है कि जनता अब केवल मुफ्त योजनाओं पर निर्भर नहीं रहना चाहती, बल्कि ठोस विकास और राष्ट्रीय सुरक्षा, आधुनिक इन्फ्रास्ट्रक्चर जैसे मुद्दों के साथ विश्वसनीय नेतृत्व और परफार्मेंस आफ पालिटिक्स को प्राथमिकता दे रही हैं। 2024 के लोकसभा चुनाव में पूर्व दो चुनावों की अपेक्षा भाजपा को कम सीटें मिलीं, जिसके पीछे विपक्ष द्वारा संविधान और आरक्षण को लेकर फैलाया गया भ्रम था। चुनाव के तुरंत बाद जनता ने समझ लिया कि विपक्ष की नकारात्मक राजनीति देश के

विकास में बाधक है और हरियाणा, महाराष्ट्र और अब दिल्ली की जनता का जनादेश इसका संकेत कर रहा है कि जनता अब बेहद जागरूक होकर अपने उज्ज्वल भविष्य के लिए मतदान कर रही है।

आज भारत केवल उपभोक्ता नहीं, बल्कि तकनीकी क्रांति में अग्रणी योगदान भी दे रहा है। हाल में फ्रांस में आयोजित एआइ सम्मेलन में भारत की भागीदारी से स्पष्ट हुआ कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता के क्षेत्र में भारत एक निर्णायक शक्ति के रूप में उभर रहा है। इस सम्मेलन में भारत और फ्रांस के बीच एआइ आधारित रक्षा और साइबर सुरक्षा साझेदारी को नई ऊंचाइयों पर ले जाने के लिए सहमति बनी उसके बाद प्रधानमंत्री मोदी की हुई अमेरिका यात्रा केवल एक द्विपक्षीय बैठक नहीं थी, बल्कि भारत की कूटनीतिक शक्ति के विस्तार की दिशा में एक बड़ा कदम भी थी। उस यात्रा में अमेरिका की प्रमुख कंपनियों ने भारत में 50 अरब डालर के निवेश की घोषणा की। रक्षा क्षेत्र में भारत-अमेरिका साझेदारी को और मजबूत करने के लिए महत्वपूर्ण समझौतों पर हस्ताक्षर हुए। इससे साफ होता है कि भारत- अमेरिका संबंध अब केवल व्यापार तक सीमित नहीं रहे, बल्कि वे रणनीतिक गठबंधन का रूप ले चुके हैं। यह गठबंधन हिंद-प्रशांत क्षेत्र में चीन के बढ़ते प्रभाव को संतुलित करने के लिए भी महत्वपूर्ण है। प्रधानमंत्री मोदी की अमेरिका यात्रा के दौरान यूएस इंडिया ट्रस्ट पहल की भी शुरुआत की घोषणा की गई। यह रक्षा, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, सेमीकंडक्टर, जैव प्रौद्योगिकी, ऊर्जा और अंतरिक्ष जैसे क्षेत्रों में अहम प्रौद्योगिकियों के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए दोनों देशों के बीच सहयोग को प्रेरित करेगी। इसके अंतर्गत वर्ष के अंत तक एआइ इन्फ्रास्ट्रक्चर को गति देने के लिए प्रतिबद्धता जताई गई है। भारत अगले दो वर्षों में 44 हजार करोड़ केवल टेक्नोलाजी क्षेत्र में निवेश करने की योजना पर भी काम कर रहा है, जिससे युवाओं को रोजगार तो मिलेगा ही साथ में एआइ के क्षेत्र में भारत दुनिया का नेतृत्व भी करता हुआ दिखाई देगा। इस प्रकार भारत सरकार द्वारा डिजिटल इंडिया मिशन और एआइ-मशीन लर्निंग रिसर्च को बढ़ावा देने से यह संकेत मिलता है कि भविष्य में भारत टेक्नोलाजी का उपभोक्ता के साथ-साथ वैश्विक आपूर्तिकर्ता भी बनेगा।

बीते एक दशक में भारत ने केवल आर्थिक और तकनीकी क्षेत्रों में ही नहीं, बल्कि कूटनीति और वैश्विक राजनीति में भी अपनी प्रभावशाली उपस्थिति दर्ज कराई है। काप 26 में जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए 2070 तक नेट जीरो कार्बन उत्सर्जन का लक्ष्य हो अथवा वित्त वर्ष 2023-24 में 800 अरब डालर से अधिक का निर्यात, इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था वैश्विक व्यापार में मजबूत हो रही है। रक्षा क्षेत्र में आत्मनिर्भरता की दिशा में कदम उठाए हैं, जिससे वह अब दुनिया के हथियार निर्यातक देशें में शामिल हो रहा है। साफ है मोदी सरकार की आर्थिक नीतियां, तकनीक के क्षेत्र में प्रगति, कूटनीतिक कौशल और राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति प्रतिबद्धता ने भारत को एक नई दिशा दी है। आने वाले वर्षों में भारत न केवल एक उभरती हुई शक्ति रहेगा, बल्कि एक स्थापित वैश्विक ताकत के रूप में अपनी स्थिति और सुदृढ़ करेगा।

जनसत्ता

Date: 04-03-25

शुल्क थोपने से बढ़ी आशंकाएं

परमजीत सिंह वोहरा

अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप को कार्यभार संभाले एक महीने से अधिक हो गया है। वैश्विक स्तर पर चर्चा है कि अमेरिका अपने दबदबे को तेजी से बढ़ाएगा। यह दिख भी रहा है। ट्रंप वर्ष 2024 में राष्ट्रपति चुनाव लड़ते समय कुछ मुद्दों पर बहुत आक्रामक रहे। इनमें विश्व के दूसरे देशों से किए आयात शुल्क में बढ़ोतरी हो या अमेरिका में रह रहे आप्रवासियों की नागरिकता की वैधता के संबंध में किए जाने वाले कुछ कठिन निर्णय कोई दो मत नहीं कि भारत भी इन दोनों पक्षों पर राष्ट्रपति ट्रंप की नीतियों से प्रभावित होगा। आप्रवासी भारतीयों के संबंध में अमेरिकी रुख साफ है उसने हमारे नागरिकों को अवैध करार देकर अपने देश से निकालना शुरू कर दिया हैं। ट्रंप ने विभिन्न आयातों पर शुल्कों में बढ़ोतरी कनाडा और मैक्सिको से लेकर चीन तक पर थोप दी है। बीते दिनों प्रधानमंत्री मोदी की अमेरिका यात्रा के दौरान ट्रंप के साथ मुलाकात में पारस्परिक शुल्क के निर्णय की बातें पूरे वैश्विक मीडिया में छाई रहीं। अब इन पर आने वाले समय में क्या निर्णय होगा, देखने की बात है।

अमेरिका वैश्विक व्यापार, आयात और निर्यात में लगातार घाटों के दौर से । गुजर रहा है। इन घाटों पर अमेरिका को लगाम लगाना इसलिए भी आवश्यक है, क्योंकि चीन की अमेरिका के घरेलू बाजार में पहुंच व्यापारिक फायदे से बढ़ कर उसे नियंत्रित करने के स्तर तक आ गई है। इससे अमेरिका अब आशंकित है। एक रपट के मुताबिक वर्ष 2019 से अमेरिका का वैश्विक व्यापार घाटा 846 अरब अमेरिकी डालर से बढ़ कर वर्ष 2024 के अंत तक 1212 अरब डालर तक पहुंच गया है। यह स्थिति अमेरिका के लिए बहुत चिंतित करने वाली है। ट्रंप राजनेता से पहले एक व्यापारी हैं, उन्होंने बहुत मुखर होकर अमेरिका की आर्थिक नीतियों में शुल्क बढ़ोतरी को अपने चुनावी अभियान में उठाया। इससे अमेरिका की जनता का उन्हें विश्वास भी हासिल हुआ और वे दूसरी बार राष्ट्रपति चुने गए।

राष्ट्रपति ट्रंप अमेरिकी आयातों पर शुल्क में बढ़ोतरी कर जहां एक तरफ वित्तीय आय के नए स्रोत पैदा करना चाहते है, वहीं कुछ देशों को सचेत भी करना चाहते हैं जो पारस्पारिक व्यापार में मुनाफे में हैं। एक रपट के मुताबिक अमेरिका का सबसे अधिक व्यापारिक घाटा, चीन के साथ 295 अरब डालर का है। चीन से आयात 439 अरब डालर का है, जबकि चीन को अमेरिका का निर्यात 144 अरब डालर ही है। चीन के बाद दूसरे स्थान पर मैक्सिको है, जिसके साथ अमेरिका का व्यापारिक घाटा 172 अरब डालर का है। तीसरे स्थान पर 123 अरब डालर घाटे के साथ वियतनाम है। उसके बाद इजराइल, जर्मनी, ताइवान, जापान, दक्षिण कोरिया और कनाडा है। गौरतलब है कि अंतरराष्ट्रीय व्यापार में भारत के साथ भी अमेरिका घाटे में रहता है। वर्तमान में अमेरिका का यह घाटा 46 अरब डालर के बराबर है और इस सूची में भारत दसवें स्थान पर है। अमेरिका, भारत से तकरीबन 87 अरब डालर का आयात करता है। भारत को उसका निर्यात आयात के आधे के बराबर यानी 42 अरब डालर है। हालांकि थाईलैंड के साथ भी उसका घाटा 46 अरब डालर ही है, लेकिन भारत की तुलना में अमेरिका, थाईलैंड से काफी कम आयात करता है। अन्य देशों में इटली, स्विट्ज़रलैंड, मलेशिया इंडोनेशिया, फ्रांस, आस्ट्रिया, कंबोडिया, स्वीडन और हंगरी हैं, जिनके साथ अमेरिका का घाटा लगातार बढ़ रहा है।

शुल्क को लेकर भारत के प्रति अमेरिकी रुख को अगर समझने की कोशिश करें, तो अमेरिका का भारत के साथ वैश्विक आयात में हिस्सा मात्र 19 फीसद है। फार्मा क्षेत्र में अमेरिकी आयात 45 फीसद है। यानी फार्मा क्षेत्र के कुल अमेरिकी आयात की एक तिहाई की पूर्ति भारतीय बाजार से होती है। मगर अमेरिका के कुल आयात में औषधि क्षेत्र की भागीदारी करीब पांच फीसद ही है। वहीं, परमाणु रिएक्टर और बायलर्स के आयात में भारत का हिस्सा 20 फीसद है, जबकि उस क्षेत्र का अमेरिका के कुल आयात में सात फीसद का हिस्सा है वैसे ही सोना, आभूषण तथा इलेक्ट्रिकल मशीनरी का भारत से आयात कुल मांग का 30 फीसद होता है, लेकिन इन दोनों की अमेरिका के कुल आयात में भागीदारी अधिकतम आठ फीसद की है।

वस्त्र क्षेत्र में तो अमेरिका भारत से अपनी मांग का 50 फीसद हिस्सा आयात करता है, लेकिन यह अमेरिका के कुल आयात में मात्र एक फीसद है। इससे स्पष्ट है कि अमेरिका के मद्देनजर वैश्विक व्यापारिक घाटे में भारत की बड़ी भूमिका नहीं है, जिसके हिसाब से वह अपनी शुल्क नीति निश्चित करे। मगर भारत के मद्देनजर यह भी एक सच्चाई है कि दवाइयां, कपड़े, परमाणु रिएक्टर, इलेक्ट्रिक मशीनरी, सोना- आभूषण आदि अमेरिका को अधिकतम निर्यात होता है और इन सब का हिस्सा भारत के कुल निर्यात में तकरीबन 20 फीसद से अधिक है। अगर अमेरिका इन पर शुल्क बढ़ाता है, तो यकीनन उससे इन क्षेत्रों पर बहुत मार पड़ेगी और इसका भारतीय अर्थव्यवस्था में भी असर देखा जाएगा। इस पक्ष पर फार्मा क्षेत्र के संबंध में एक बिंदु और विचारणीय है कि भारत द्वारा अमेरिका को न्यूनतम लागत पर कई जेनेरिक दवाइयों का निर्यात किया जाता है, जो अमेरिका के लिए बड़ा लाभदायक है, लेकिन अगर अमेरिका द्वारा दवा क्षेत्र पर भी शुल्क बढ़ाया जाता है, तो इससे इन दवाइयों की लागत अमेरिका के घरेलू उत्पादकों के लिए बढ़ जाएगी, जो फायदेमंद सौदा नहीं होगा।

एल्युमीनियम तथा स्टील पर की गई शुल्क बढ़ोतरी अचंभित करने वाली है और इसका भारत पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। इन पर ट्रंप द्वारा अपने पिछले कार्यकाल में वर्ष 2018 में दस फीसद शुल्क निश्चित किया गया था। इस दर को ट्रंप ने अपने इस कार्यकाल में बढ़ा कर 25 फीसद कर दिया है। इस बढ़ोतरी से भारत का यह क्षेत्र बहुत अधिक प्रभावित होगा। राष्ट्रपति ट्रंप को यह भी समझना होगा कि भारत का अमेरिका को एल्युमीनियम निर्यात तीन फीसद ही है और स्टील में तो यह 1.50 फीसद है। जबकि अमेरिका एल्युमीनियम का सबसे अधिक आयात कनाडा से करता है।

सकारात्मक बात यह है कि सेवा क्षेत्र के अंतर्गत भारत तेजी से अमेरिका को निर्यात कर रहा है। इन दिनों चर्चा है कि भारत अमेरिकी चीजों पर आयात शुल्क कम करें, ताकि अमेरिका इस बात से प्रोत्साहित होकर भारतीय आयात पर भी शुल्क कम लगाए। इसके एवज में भारत अगर वैश्विक व्यापार में अपनी नीतियों में बदलाव करते हुए सेवा क्षेत्र से अमेरिका को होने वाले निर्यात को बढ़ाने पर अधिक ध्यान केंद्रित रहे, तो यह उसके लिए तुलनात्मक रूप से मुनाफे वाला सौदा हो सकता है। भारत को यह भी समझना होगा कि अमेरिका में इस नई शुल्क नीति के कारण जब अमेरिका के आयात महंगे होंगे, तो उसका असर वहां के घरेलू बाजार में देखने को भी मिलेगा। जो भी हो, अमेरिकी डालर में भारतीय मुद्रा की तुलना में मजबूती का दौर अब लगातार चलने वाला है। इससे भारत को बहुत सतर्क रहना होगा, क्योंकि इसका असर भारत के सभी आयात पर पड़ेगा और उससे घरेलू बाजार में महंगाई भी बढ़ेगी।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 04-03-25

यूक्रेन, यूरोप और ट्रंप

अवधेश कुमार

यूक्रेन न मोर्चे पर अंतिम समाचार यह है कि ब्रिटेन फ्रांस और यूक्रेन ने मिलकर एक युद्धविराम 'योजना बनाई है जिसे अमेरिका के सामने प्रस्तुत किया जाएगा। ब्रिटिश प्रधानमंत्री केअर स्टार्मर की बात मानें तो इस पर लगभग सहमति बन गई है। युद्ध समाप्त करने पर चर्चा के लिए यूरोपीय नेताओं के साथ 2 मार्च को शिखर सम्मेलन आयोजित किया गया था।

इस शिखर सम्मेलन में फ्रांस, जर्मनी, डेनमार्क, इटली, नीदरलैंड, नॉर्वे, पोलैंड, स्पेन, कनाडा, फिनलैंड, स्वीडन, चेक गणराज और रोमानिया के नेता के अलावा तुर्किये के विदेश मंत्री, नाटो महासचिव तथा यूरोपीय आयोग और यूरोपीय परिषद के अध्यक्ष ने भाग लिया। विश्व की दृष्टि से यह यूरोप का संपूर्ण सशक्त शिखर सम्मेलन था। विश्व ने देखा कि किस तरह यूरोपीय नेताओं ने वोलिदिमीर जेलेंस्की की आवभगत की तथा उन्हें महत्त्व दिया। ओवल ऑफिस यानी अमेरिकी राष्ट्रपति कार्यालय से निकलने के बाद जेलेंस्की सीधे ब्रिटेन आए और प्रधानमंत्री स्टार्मर ने उन्हें गले लगाया और कहा कि उन्हें उनके देश का अटूट समर्थन प्राप्त है तो इसके पीछे तत्काल ट्रंप एवं दुनिया को एक संदेश देने की रणनीति है। वास्तव में अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने जिस ढंग से यूक्रेन पर अपने तेवर दिखाए और पहले फ्रांस के राष्ट्रपति इमानुएल मैक्रों के साथ उनकी बहस हुई तथा जेलेंस्की को व्हाइट हाउस से बाहर किया गया वह दुनिया में सबसे बड़ी हलचल मचाने वाली घटना बन गई।

अमेरिकी इतिहास की यह पहली घटना थी जब व्हाइट हाउस में दो नेताओं के बीच इस तरह बहस हुई, दोनों उंगली उठाते दिखे तथा किसी विदेशी मेहमान को वहां से बाहर निकालना पड़ा प्रश्न है कि अभी आगे होगा क्या? ऐसा दिख रहा है कि यूरोप के ज्यादातर नेता इस समय जेलेंस्की के साथ है। हालांकि वर्तमान यूरोपीय नेता अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था में उथल-पुथल के परिणाम से आशंकित हैं और वे संतुलित आचरण की कोशिश कर रहे हैं। ब्रिटिश प्रधानमंत्री स्टार्मर ने सधे हुए वक्तव्य कहा कि अब हम इस बात पर सहमत हो गए हैं कि ब्रिटेन, फ्रांस और संभवतः एक या दो अन्य देशों के साथ मिलकर यूक्रेन के साथ लड़ाई रोकने की योजना पर काम किया जाएगा और फिर उस पर अमेरिका के साथ चर्चा करेंगे। स्टार्मर ने कहा कि उन्हें पुतिन पर विश्वास नहीं है, लेकिन ट्रंप पर विश्वास है और वह जब कहते हैं कि उन्हें शांति चाहिए तो हम मान कर चलते हैं कि वह यही चाहते हैं। इसमें दो मत नहीं कि कोई समझौता स्थाई शांति की गारंटी होनी चाहिए। इसलिए स्टार्मर अगर कह रहे हैं कि हम अस्थाई युद्ध विराम का जोखिम नहीं ले सकते तो सामान्य तौर पर इसे असहमत होना कठिन है एक बड़े समूह को ट्रंप का व्यवहार अटपटा और एकपक्षीय लग सकता है। धीरे-धीरे विश्व में ऐसे लोगों की संख्या बढ़ी है जो मानते हैं कि उनका व्यवहार गलत नहीं है। एक समय यूक्रेन के प्रति विश्व की सहानुभूति थी और यह सच है कि अमेरिका और यूरोप की मदद के कारण पुतिन की युद्ध योजना पर तुषारापात हुआ यूक्रेन जैसे छोटे देश को घुटनों पर लाना उनके लिए कठिन हो गया। किंतु पूरे काला सागर सहित क्रीमिया के क्षेत्र को देखें तो वहां लंबे समय से यूरोप की भूमिका के कारण ही स्थिति इतनी जटिल है कि उनका स्थाई निपटारा संभव नहीं।

सोवियत संघ जिन राज्यों को मिलकर बना उनमें ज्यादातर आज स्वतंत्र हैं, पर उनकी भौगोलिक सीमाएं खासकर समुद्र में और आसपास इतनी स्पष्ट नहीं है। न भूलिए कि प्रथम और द्वितीय युद्ध विश्व युद्ध के पीछे उसे क्षेत्र की भौगोलिक जटिलताएं और राजनीतिक व्यवहार की बड़ी भूमिका थी। द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त होने के बावजूद अमेरिका के समक्ष सोवियत संघ के दूसरी महाशक्ति के रूप में खड़ा होने के कारण थोड़ा संतुलन रहा तथा यूरोप के प्रमुख देशों ने आपस में भौगोलिक जटिलताएं खत्म कीं, राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं पर लगाम लगाई। बावजूद न संपूर्ण यूरोप के लिए और न विश्व के लिए अस्थाई सुरक्षा और शांति सुनिश्चित हुई। सोवियत संघ के विघटन के बाद अमेरिकी

नेतृत्व वाले नाटये और उसकी सेना कायम रही। अगर अमेरिका और यूरोपीय देश यूक्रेन को नाटो का सदस्य बनाने की ओर कदम आगे नहीं बढ़ाते तथा उसे हथियार नहीं देते तो पुतिन के लिए इस तरह आक्रमण करने का आधार नहीं बनता। शेष विषयों को छोड़ दें तो जैलेंस्की यह घोषणा कर देते कि वह नाटो का सदस्य नहीं बनेंगे तो भी शायद स्थिति इतनी बिगड़ती नहीं। सच यह है कि यूक्रेन- रूस युद्ध विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि तैयार कर चुका है। कई बार आपको शांति के लिए दबाव और अन्य बाध्यकारी दबावकारी कड़े भी कदम उठाने पड़ते हैं। ऐसा लग रहा है कि रूस यूक्रेन युद्ध को रोकने के लिए ही ट्रंप ने इस स्तर कड़ा रुख अपनाया है।

जेलेंस्की को भी अमेरिका के महत्त्व का पता है और उन्होंने कहा है कि वह खनिज पर समझौते के लिए फिर से व्हाइट हाउस जाने को तैयार हैं, लेकिन उन्हें सुरक्षा की गारंटी चाहिए। जेलेंस्की विश्व इतिहास को ठीक से देखें कोई देश किसी की सुरक्षा की स्थाई गारंटी नहीं दे सकता। इस समय उन्हें गारंटी दी जा सकती है। बस, वे स्वयं को भी बड़ी सैन्य शक्ति बनने या ऐसी अन्य महत्त्वाकांक्षाओं से अलग रखें। यूरोपीय देशों को भी समझना होगा कि पहले की तरह यूक्रेन की सैन्य और कूटनीतिक मदद जारी रखकर वे कुछ समय तक आर्थिक लाभ पा सकते हैं, रूस और यूक्रेन भी दबाव में रह सकता है, लेकिन यह विश्व को बड़े संकट में फंसाने वाला भी साबित होगा।

यूरोपीय देशों में तत्काल सबसे ज्यादा सक्रिय ब्रिटेन और फ्रांस को भी अपनी शक्ति की सीमाओं का आभास होगा। अमेरिका के साथ यूरोप की सुरक्षा व्यवस्था इतनी आबद्ध है कि वह इससे बिल्कुल अलग हटकर एकाएक नई सशक्त सुरक्षा प्रणाली उत्पन्न नहीं कर सकते। ब्रिटेन का तो नाभिकीय ढांचां तक अमेरिका के साथ अविच्छिन्न जुड़ाव है। उनको पूरी तरह अलग कर अमेरिका के विरुद्ध जाना इस समय असंभव लगता है। इसलिए उनके अंदर भी नये सिरे से मंथन चल रहा है। ट्रंप अड़े रहते हैं तो भविष्य में एक सहमतिकारक समझौता संभव है। कम से कम तत्काल विश्व के हित में होगा और आगे इस पर शांति की कोशिश हो सकती है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 04-03-25

अब थमे युद्ध

संपादकीय

यूक्रेन - रूस युद्ध रोकने की तेज कवायद पर सबकी निगाह टिकी है, तो यह सुखद भी है और स्वागतयोग्य भी। दरअसल, यह जन - दबाव ही है, जो युद्ध के खिलाफ सक्रिय है। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप हों या रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन या यूक्रेनी राष्ट्रपति वोलोदिमीर जेलेंस्की, ये तीनों नेता कहीं न कहीं युद्ध से निकलने की राह तलाश रहे हैं। दुनिया में नई बात यह हुई है कि अमेरिका से सहयोग लिए बिना यूरोपीय देश मिलकर युद्ध रोकने की सम्मानजनक राह तलाश रहे हैं।

लंदन में यूक्रेन रक्षा शिखर सम्मेलन के बाद ब्रिटिश प्रधानमंत्री कीर स्टार्मर ने दोटूक कहा है कि यूरोपीय राष्ट्र इतिहास के चौराहे पर खड़े हैं। और उन्हें यह समझना चाहिए कि यह केवल संवाद नहीं, बल्कि कार्रवाई करने का समय है। वाकई युद्ध रोकने की सम्मानजनक राह खोजना आज समय की मांग है। डोनाल्ड ट्रंप चाहते हैं कि यूक्रेन स्वयं आगे बढ़कर युद्ध रोकने की घोषणा करे, पर युद्ध को ऐसे रोकना अनुचित होगा। इस युद्ध से यूक्रेन को भी बहुत नुकसान हुआ है और यह युद्ध वास्तव में रूस ने ही शुरू किया था। अब अगर यूक्रेन अपनी ओर से युद्ध रोकने की घोषणा करेगा, तो न केवल उसका अपमान होगा, बल्कि जेलेंस्की के तमाम फैसलों पर सवाल उठने लगेंगे।

अतः अमेरिका से अलग यूरोपीय देशों के नेतृत्व द्वारा युद्ध रोकने के लिए चार-चरण वाली योजना की घोषणा विचारणीय है। यूक्रेन की सुरक्षा बहाल रखते हुए यह जरूरी है कि युद्ध के विरोध में समान सोच रखने वाले देशों का एक समूह बने । गौर करने की बात है कि जब यूक्रेन को आर्थिक मदद देने से अमेरिका पीछे हटने लगा है, तब यूरोपीय देश यूक्रेन के लिए वित्तीय व्यवस्था करने के पक्षधर हैं। ब्रिटिश प्रधानमंत्री कीर स्टार्मर ने उचित ही कहा है कि हर देश को अपने तरीके से युद्ध रोकने में योगदान देना चाहिए। कनाडा सहित यूरोपीय देशों के करीब 19 नेताओं की इस विशेष बैठक में जेलेंस्की भी मौजूद थे। जो ताकत उन्हें अमेरिका में नहीं मिली, वह लंदन में मिली है। यह बदलते दौर का संकेत है। अक्सर लंदन को अमेरिका के पिछलग्गू के रूप में देखा गया है, पर दशकों बाद ऐसा हुआ है, जब लंदन ने अलग रास्ता चुना है। वह जेलेंस्की के साथ खड़ा है। ये सभी देश मिलकर यूक्रेन को सैन्य सहायता जारी रखेंगे। रूस पर आर्थिक दबाव बढ़ाएंगे। पिछले दिनों दुनिया ने देखा कि ट्रंप ने युद्ध रोकने की कवायद में यूक्रेन की ही उपेक्षा कर दी थी, इस गलती को फ्रांस, इंग्लैंड जैसे देशों ने सुधार लिया है। विश्व हित में यह सुधार जरूरी है।

यह बहुत दुखद है कि पहले अमेरिका के नेतृत्व में यूक्रेन को मुकाबले के लिए प्रेरित किया गया। यूक्रेन को नाटो में शामिल करने के लिए अमेरिका भी लालायित था, जबकि यूक्रेन का नाटो में शामिल होने की कोशिश ने ही रूस को हमले के लिए उकसाया। दोनों देश तीन साल से लड़ रहे हैं। इसमें कोई शक नहीं है कि हार-जीत का फैसला बहुत असहज और मुश्किल है, अतः ऐसा युद्ध विराम जरूरी है, ताकि कोई देश अपमानित न हो और न कोई देश जीत के गर्व से भर जाए। अब समय आ गया है, पुतिन को भी युद्ध रोकने के लिए मानवीय दृष्टि का परिचय देना चाहिए। उन्हें ईमानदारी से समझना होगा कि वहां लड़ने के लिए जवानों की कमी पड़ने लगी है। अमेरिका के लिए यह जरूरी है कि वह दुनिया में एक अविश्वसनीय सहयोगी के रूप में पहचान न बनाए। सबसे पुराने आधुनिक लोकतांत्रिक देश अमेरिका के प्रति यदि अविश्वास बढ़ा, तो दुनिया बहुत घाटे में रहेगी ।

Date: 04-03-25

भाषा के मोर्चे पर फिर मुखर दक्षिण

एस. श्रीनिवासन, (वरिष्ठ पत्रकार)

तमिलनाडु ने एक बार फिर केंद्र के साथ भाषा- युद्ध छेड़ दिया है। वह तीसरी भाषा लागू करने, यानी त्रि-भाषा फॉर्मूले का विरोध कर रहा है। हालिया विवाद केंद्रीय शिक्षा मंत्री धर्मेंद्र प्रधान के बयान से पैदा हुआ है, जिसमें उन्होंने कहा है

कि अगर राज्य नई शिक्षा नीति को लागू नहीं करेंगे, तो शिक्षा योजनाओं के लिए केंद्र से मिलने वाली धनराशि रोक दी जाएगी। तमिलनाडु इसे संविधान का अपमान और हिंदी थोपने का प्रयास बता रहा है।

मुख्यमंत्री एम के स्टालिन द्वारा प्रधानमंत्री को लिखे गए पत्रों के जवाब में शुरू हुआ वाक् युद्ध अब केंद्र व राज्य के बीच पूर्ण टकराव का रूप लेता जा रहा है। इस विवाद में अब कर्नाटक भी शामिल हो गया है। उसने तमिलनाडु का समर्थन करने का वायदा किया है। कन्नड़ विकास प्राधिकरण ने तो त्रि-भाषा फॉर्मूले को द्वि-भाषा नीति में बदलने की तैयारी भी शुरू कर दी है। कर्नाटक को लगता है कि केंद्र का भाषा संबंधी फरमान उसकी भाषायी अस्मिता पर सीधा हमला है।

केरल और दो तेलुगु राज्य आंध्र प्रदेश व तेलंगाना स्थिति थोड़ी अलग है। ये दोनों प्रदेश तमिलनाडु के साथ सहानुभूति रखते हैं और अपनी-अपनी मातृभाषा के विकास का भी समर्थन करते हैं, लेकिन हिंदी थोपे जाने को लेकर बहुत ज्यादा चिंतित नहीं दिखते। उनको भरोसा है कि उनकी संस्कृति की रक्षा होगी और मानते हैं कि अपनी अस्मिता पर होने वाले किसी भी तरह के हमले से वे बच सकते हैं।

यह पूरा मामला तब शुरू हुआ, जब स्टालिन ने 27 अगस्त को प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर दखल देने की मांग की, क्योंकि सर्वशिक्षा अभियान के तहत राज्य को केंद्रीय फंड नहीं मिल रहा था। उन्होंने लिखा, शिक्षा को अनसुलझे नीतिगत मतभेदों का बंधक नहीं बनाया जाना चाहिए। मगर वह मुद्दा तब गरम हो गया, जब केंद्रीय शिक्षा मंत्री ने संकेत दिया कि फंड जारी करना नई शिक्षा नीति के क्रियान्वयन से जुड़ा मसला है। उन्होंने मुख्यमंत्री को पत्र लिख संकीर्ण नजरिया छोड़ने की सलाह दी।

वाक् युद्ध जैसे ही तेज हुआ, स्टालिन ने 'एक्स' पर लिखा कि किस तरह हिंदी सीखने को लेकर लोगों में बहुत सीमित आकर्षण है। उधर, केंद्र ने स्पष्ट किया कि हिंदी थोपने का उसका कोई इरादा नहीं है, तो तमिलनाडु ने भी साफ कर दिया कि वह हिंदी सीखने का नहीं, बल्कि इसे थोपे जाने का विरोध कर रहा है।

जाहिर है, दोनों पक्ष एक-दूसरे के उलट बोल रहे हैं। वास्तव में, नई शिक्षा नीति हर जगह हिंदी पढ़ाने पर जोर नहीं देती, बल्कि त्रि-भाषा फॉर्मूले पर जोर देती है। इसमें कहा गया है कि तीन भाषाओं में से कम से कम दो भारत की मूल भाषा होनी चाहिए। तमिलनाडु दो भाषा फॉर्मूले का पालन कर रहा है और इसे ही जारी रखना चाहता है। वह 1937 से हिंदी थोपे जाने का विरोध कर रहा है। हालांकि, 1967 में यह मसला शांत हो गया था, जब केंद्र ने हिंदी और अंग्रेजी को आधिकारिक भाषा के रूप में इस्तेमाल करने पर सहमति जताई थी।

अभी तमिलनाडु के पास संदेह करने के कारण हैं, क्योंकि अप्रैल 2022 में केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह ने संसदीय भाषा समिति को संबोधित करते हुए कहा था कि अब समय आ गया है कि हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में अंग्रेजी की जगह ले लेनी चाहिए। हालांकि, केंद्र तीन भाषा संबंधी नीति पर जोर देता है, लेकिन इसे देश में कहीं भी सही मायने में लागू नहीं किया जा सका है। उत्तर भारत में तो दक्षिण की किसी भी भाषा को सीखने पर जोर नहीं दिया गया है।

तमिलनाडु के राज्यपाल आर एन रवि भी मुख्यमंत्री पर निशाना साधते हुए कह रहे हैं कि उनकी सरकार जान-बूझकर छात्रों को हिंदी सीखने से रोक रही है। भाजपा-आरएसएस का मानना है कि अखंड भारत की उनकी योजना को साकार करने में हिंदी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह मुद्दा भाजपा और द्रमुक के बीच के वैचारिक अंतर से भी जुड़ा है,

क्योंकि द्रमुक के लिए विविधता ही वह विशेषता है, जो भारत को जोड़ती है, जबकि भाजपा एकरूपता की बात करती है। दिलचस्प बात यह है कि पड़ोसी राज्य केरल में इस मुद्दे का कोई असर नहीं है, जबकि शिक्षा के मामले में उसका प्रदर्शन सबसे अच्छा है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि केरल के लोग दुनिया भर की यात्राएं करते हैं और वे नई-नई भाषाएं सीखने में माहिर हैं। फिर भी, मलयालम के प्रति उनका प्यार कम नहीं हुआ है। उसने तीन भाषा संबंधी फॉर्मूला लागू कर रखा है, लेकिन वह भी हिंदी थोपे जाने का मुखर विरोधी है और इस मुद्दे पर तमिलनाडु के साथ है।

इसी तरह, तेलंगाना और आंध्र प्रदेश ने भी त्रि-भाषा नीति लागू कर रखी है, जिसकी एक वजह तो निजाम शासन है, जिसमें उर्दू के साथ तेलुगु और हिंदी पर भी जोर था। यहां लोगों को मिश्रित भाषा बोलने में कोई दिक्कत नहीं है। संयुक्त आंध्र प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री एनटी रामाराव ने भाषा का मुद्दा या तेलुगु गौरव का मसला उठाया था, लेकिन यह परवान नहीं चढ़ सका। दरअसल, पिछले साल चुनाव हारने वाले विभाजित आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री जगन मोहन रेड्डी ने तेलुगु माध्यम के स्कूलों की जगह अंग्रेजी माध्यम के स्कूल बनवाए। इसका कई लोगों ने स्वागत किया, क्योंकि उन्हें रोजगार के अवसर दिखाई दिए।

.. कर्नाटक में भी कई स्थानीय भाषाएं बोली जाती हैं और उसने मुंबई, कोंकण, हैदराबाद जैसे पड़ोसी क्षेत्रों की भाषाओं को भी अपना है। इससे भाषा को लेकर राज्य का नजरिया संतुलित बना है और त्रि-भाषा फॉर्मूले के माध्यम से हिंदी को अपनाने में इसे कोई समस्या नहीं हुई है। मगर कर्नाटक भी अब यही कह रहा है कि त्रि- भाषा नीति देश में कहीं लागू नहीं है।

तमिलनाडु में अगले साल विधानसभा चुनाव होने हैं, तो भाषा का मुद्दा यहां तूल पकड़ सकता है। 2024 के चुनाव में बतौर गठबंधन सदस्य भाजपा का मत-प्रतिशत बढ़ा था, लेकिन वह एक भी सीट जीत नहीं सकी थी। मगर अब केंद्रीय गृह मंत्री ने यहां एनडीए सरकार बनने की उम्मीद जताई है। क्या इसमें यह मुद्दा फायदेमंद हो सकता है ? हिंदी विरोध का लाभ स्टालिन और द्रमुक को मिल सकता है, लेकिन भाजपा मानती है कि इस मुद्दे पर द्रमुक से उलझकर वह अन्नाद्रमुक और अभिनेता विजय की टीवीके को सुर्खियों से बाहर रख सकती है, जिसका उसे फायदा हो सकता है। यही कारण है कि आने वाले दिनों में केंद्र और राज्य के बीच जुबानी जंग तेज हो सकती है।